बूँद-बूँद

(काव्य-संग्रह)

प्रकाशक :
स्वयं प्रकाशन
लालीमाई की बगीची से आगे,
नत्थूसर गेट के बाहर, बीकानेर (राज.)

बूँद-बूँद

डॉ. शंकरलाल स्वामी

संस्करण . प्रथम, 2000

प्रकाशक : स्वयं प्रकाशन,
लालीमाई की बगीची से आगे,
नत्थूसर गेट के बाहर, बीकानेर (राज.)

मुद्रक : कल्याणी प्रिंटर्स
मालगोदाम रोड़, बीकानेर

लेजर टाईप सैटिंग : श्री करणी कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स,
गंगाशहर, बीकानेर (राज.)

मोल : 80/- रुपये

BOOND-BOOND by Dr. Shankarlal Swami
Published by Swayam Prakashan, Bikaner
Price Rs 80/-

HINDI-POETRY

अनुक्रम

अभिव्यक्ति के बीच का मौन

डॉ शंकरलाल स्वामी व्यवसाय से चिकित्सक हैं। वे स्थूल शरीर की रेखाओं के ज्ञात ही नहीं हैं, अपितु सूक्ष्म मन की संवेदनाओं से भी गहराई से परिचित हैं। 'बूँद-बूँद' उनक नया काव्य-संग्रह है।

समकालीन हिन्दी कविता अपने नये-नये तेवरों के साथ उभर रही है। उसमें समसामयिक प्रसंगों का अधिक जुड़ाव होना स्वाभाविक है। वक्त के साथ बदलती हुई मानव-चेतना आज की कविता का प्रमुख स्वर है। आज का कवि अपने परिवेश के प्रति विशेष रूप से जागरूक है। उसमें भावुकता के स्थान पर 'वैचारिक बेचैनी' अधिक है। इसका यह अर्थ भी है कि आज के कवि का जीवन तथा समाज के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है।

इस दृष्टि से 'बूंद-बूंद' का कवि आस्थावान कवि है। उनकी कविताएं समस्त स्थितियों-परिस्थितियों का संतुलित आकलन करती हुई विसंगत परिवेश में भी विश्वास की लौ प्रज्वलित करती चलती हैं। डॉ. स्वामी सशक्त गीतकार हैं। उन्होंने अपने गीतों को नयी संवेदना तथा अभिनव शैली से पुष्ट किया है। प्रवृत्तिमूलक भावना कवि के हर गीत के साथ जुड़ी हुई है। सरस्वती वंदन तथा मातृभूमि वंदन से आरम्भ करके कवि ने वासंती छंदों से गीतों का शृंगार किया है-

अब तो खोल रे किवाड़, हृदय कंज को उघाड़
राग-रंग है उमंग है, वसंत संग है।

कवि प्रकृति-प्रेमी हैं। प्रकृति के कण-कण को सौंदर्य चेतना से सम्पृक्त करते हैं तो कभी राष्ट्रीय चेतना से, किंतु विकास-पथ उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होता-

नभ के अवरोधों का भय क्या
तेरी पहुंच क्षितिज का छोर।

राष्ट्रीय चेतना से समबद्ध अनेक कविताओं में कवि का आह्वान है-

उठो, जागो, बढ़ो आगे हिफाजत देश की करना

राष्ट्रीय कविताओं में भी प्रकृति-प्रेम स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है। 'वर्षाकुमारी' कविता में इस भाव की अभिव्यंजना देखिए-

सिंधु-तन विस्तार मेरा, वाष्प बनकर व्योम घेरा
भूमि पर नाचूं मैं रिमझिम, पारदर्शी गात धारी।

'चाँदनी' जैसे आलम्बनगत चित्र काव्य के विशेष आकर्षण हैं।

डॉ. स्वामी को अपनी कविताओं में विशेष सफलता मिली है। इनमें आधुनिकता बोध का स्वर अधिक प्रखर है। इनमें मानव-निष्ठा और मानव-श्रम के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। वैसे तो प्रत्येक युग स्वयं में आधुनिकता बोध को लिये हुए होता है, किंतु वर्तमान

युग की 'आधुनिकता' तो कई रूपों से जुड़ी है। विज्ञानवाद, औद्योगिकीकरण, नये जीवन-मूल्यों की अभिव्यंजना आदि इसमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। आज का कवि मानवीय भविष्य के प्रति आस्थावान है, किंतु वह परम्परा का परित्याग नहीं करता।

'बूंद-बूंद' का कवि भी अनागत के प्रति विश्वासमयी दृष्टि रखता है। उसकी धारणा है कि कुछ भी नष्ट कहां होता है, कुछ न कुछ कहीं न कहीं अवश्य रहता है, यही अमरत्व है-

निर्माण, ध्वंस/फिर निर्माण
यही अमरत्व है।

कई बार जिजीविषा पर उसांसों का घनीभूत कोहरा और धुंध छाने लगती है, फिर भी कवि, धुंध के उस पार किसी ऊष्मा से पूर्ण प्रकाश-रश्मि को तलाशने लगता है और इस तलाश में उसे अपनी ठंडी देह की रगों में गर्माहट का अनुभव भी हो जाता है। कवि की चाह है कि अन्तःकरण में सदाचार की प्राणवायु का प्रवेश होना चाहिये-

अन्तस्तल में/मानवता के बीज बिखेरो
प्यार के पोषण की खेती/लहलहाने दो।

विध्वंस के 'एटमी विचार', रत्नाकर में विसर्जित कर हमें भविष्य के विश्वकर्मा बनना चाहिए। कवि की यह भी धारणा है कि-

अभिव्यक्ति के बीच का मौन
सदा अनिर्वचनीय रहा है।

कथ्य की व्यापकता और शिल्प की प्रेषणीयता के कारण सभी कविताएं प्रभविष्णु हैं। गीतों में मिठास है, लगता है-

मितरा मन-ममोलिये ने
गीत मखमली बुने।।

'प्रतिमा', सी-68, सादुलगंज,
बीकानेर-334003 (राज.)
वसंत-पंचमी, 2000

-डॉ. मदन केवलिया

सरस्वती वन्दन

माँ शारदा हमको भी तो।
ले लीजिये अपनी शरण।
करते तेरी आराधना।
हरलो अविद्या आवरण।।

हे शुभ्रवसना गौरवदना।
कंज-मुख हँसते नयन।
वीणा करे झंकार कर।
सुन खिल उठे अंतःकरण।।

मन-हंस पर आरूढ़ हो।
हृद ज्ञान की आभा भरो।
मम कण्ठ में वासा करो।
वन्दहु सदा तव शुचि चरण।।



मातृभूमि वन्दन

मातृभूमि वन्दनम्।
जगत-जननी वन्दनम्।

अभय दो माँ अन्न दो माँ।
आलसी को क्रिया दो माँ।
जीवनी का ज्ञान दो माँ।
दया का वरदान दो माँ।
व्यास वाणी वन्दनम्।।

अज्ञ को विद्वान कर दो।
कण्ठ में रस और स्वर दो।
आँख में करुणा का जल दो।
मधुरवाणी अधरफल दो।
सूर, तुलसी वन्दनम्।।

देश के कंधे सबल हों।
प्राणियों के प्रण अटल हों।
हृदय में आशा प्रबल हो।
चित्त ज्यों खिलते कमल हों।
वेद-वाणी वन्दनम्।।



राष्ट्र-भू नमन

राष्ट्र-भू को कर नमन।
भारती के छू चरन।।

माँ मेरी की गोद प्यारी।
महकती हर एक क्यारी।
हिन्द की जय-जय से गुंजित।
व्योम में चौदह भुवन।।

सिर हिमालय का मुकुट।
घाटियों के राह-घट।
मेखला सरिताएँ तेरी।
धो रहा सागर चरन।।

हरीतिमा के वस्त्र निर्मल।
फूल कलियां करे झिलमिल।
माँ तुम्हारे हम दुलारे।
तूं ही है तारन तरन।।

तुम हमारा बुद्धि बल हो।
तुम तपस्या का स्थल हो।
नर नारायण कर्मयोगी।
कर रहे तेरा यजन।।

हमने ये किस्से सुने हैं।
वक्त पर जिन्दे गड़े हैं।
आन बान सम्मान खातिर।
त्याग देते प्राण-तन।।



भावना

तुम तो कोई ओस से भीगी कली हो।
या कन्हैया की कोई ब्रज की लली हो।
स्वाति में झरती हुई हो बूँद कोई।
सीप के मुख में पड़ी मोती बनी हो।।

भोर की लाली हो, संध्या में ढली हो।
शहद से भीगी-सी मिश्री की डली हो।
रामजी के राज्य की तुम हो अयोध्या।
दूध-मक्खन से सनी ब्रज की गली हो।।

तुम नदी की धार का संगीत ही हो।
तुम पवन का पर्वतों का गीत ही हो।
मेघ-विद्युत की पुरानी प्रीत हो तुम।
पुष्प-सी कोमल हो या नवनीत ही हो।।

तुम किसी कविता में बिखरी मधुरता हो।
तुम सुगन्धी से भरी कोमल लता हो।
प्रेयसी के गीत में हो प्रणय जैसे।
भागवत में कृष्ण-राधा की कथा हो।।

आज तक जो कह दिया इतिहास हो तुम।
कल जो कहना है वही आभास हो तुम।
सत्य, शिव, सुंदर हो, इससे भी परे हो।
शरदपूनम हो कि ब्रज की रास हो तुम।।



वासन्ती छन्द

लता, कली, पुष्प, भृंग, अंग-अंग में अनंग।
वात में सुगंध संग, प्राण में उमंग है।।
मधुप-मुख पराग लिप्त, कली-कली ओस-सिक्त।
शहद मक्खियां सुमन से मांगती मकरंद है।।
अरुण भोर के क्षितिज तले में पुष्पवाटिका में।
रक्त, पीत, बैंगनी सुमन अनेक रंग हैं।।
अब तो खोल रे किवाड़, हृदय कंज को उघाड़।
राग-रंग है उमंग है, वसंत संग है।।

बाग में वसंत राग-राग में वसंत गूंजे।
कोकिला की कूक में वसंत ही वसंत है।।
गांव में वसंत खेत-खेत में वसंत-गंध।
द्रुम-लता गले मिले वसंत ही वसंत है।।
वात में वसंत पुरुष-नार के हिये वसंत।
नयन सों निहारनो वसंत ही वसंत है।।
बह रहे बयार में बयार के दुलार में।
भोर के खुमार में वसंत ही वसंत है।।



ऐ मेरी मैना

ऐ मेरी मैना मुझे बता, कहाँ गया भाईचारा।
लाता था मोती मैत्री के, कहाँ गया वो बनजारा।।

कहाँ गये ऋषियों के आश्रम।
कहाँ गये शाषक के श्रमकण।
एकलव्य-सी भक्ति कहाँ है।
अर्जुन जैसी शक्ति कहाँ है।
कहाँ गया रसखान हमारा, ब्रजमाटी का मतवारा।
ऐ मेरी मैना मुझे बता, कहाँ गया भाईचारा।।

कहाँ गया लक्ष्मण-सा भाई।
कहाँ गयी वो सीता माई।
पवनपुत्र-सी वो सेवकाई।
सपने में भी नजर न आई।
भीष्म पितामह राजपथों पर, क्यों फिरता मारा-मारा।
ऐ मेरी मैना मुझे बता, कहाँ गया भाईचारा।।

कहाँ गया वो चीर-बढैया।
शिवि कहाँ तन-माँस लुटैया।
परहित खातिर समर लड़े जो।
कहाँ गया वो राम-रमैया।
शंकर तुम बिन कौन पियेगा, कालकूट विष का प्याला।
ऐ मेरी मैना मुझे बता, कहाँ गया भाईचारा।।



ऐसी कोई बात कहो

कान को मीठी लगे, ऐसी कोई बात कहो।
मिलके यह कौम जिये, ऐसी कोई बात कहो।।

इन अँधेरों से हमें कोई वास्ता ही नहीं।
चाँदनी रात रहे, ऐसी कोई बात कहो।
कान को मीठी लगे.................

जात ही जात उगाने के बीज क्यों बोये।
सबको इन्सान कहे, ऐसी कोई बात कहो।
कान को मीठी लगे..................

अब उतारो इन मुलम्मों के जेवरातों को।
कोई नकली न रहे, ऐसी कोई बात कहो।
कान को मीठी लगे...................

दिल में दरिया हो मोहब्बत का, प्यार के सुर हों।
आँख से प्यार बहे, ऐसी कोई बात कहो।
कान को मीठी लगे..................

मैं तो कहता हूँ खुदा, शम्भु, मसीहा, नानक।
सभी के दिल में रहे, ऐसी कोई बात कहो।।
कान को मीठी लगे..................



जल मेरे दीपक

जल मेरे दीपक निर्भय जल।
है अनादि तेरा तपबल।
नित्य करे जीवन-पथ रोशन।
तूं राही का चिर सम्बल।।

तूं ही भेद तिमिर का घेरा।
हृदय-गुफा का मेट अँधेरा।
मन का कमल खिला दे ऐसे।
प्रेम द्विरेफ करे हलचल।।

तूं मुँडेर पर चौकस रहना।
तूं गलियों में पहरा देना।
कोहरा, धूआं करें आक्रमण।
तेरी जोत जले अविचल।।

जलने से तेरा तन कुन्दन।
तूं है आँखों का अवलंबन।
तुम दोनों से जग जगमग है।
सदा दीप्त है यह भूतल।।

तेरा कर्म तिमिर को हरना।
सदा बहा प्रकाश का झरना।
घर, बाहर, अंतस उजियारा।
तूं कर, फैला निज आँचल।।



बूँद-बूँद

बूँद-बूँद गूँथ-गूँथ।
धार-धार छंद बुने।
पवन ने दिये जो स्वर।
तो गीत बन बरस बहे।।

मानस के हंस गीत।
प्राणियों की अमल प्रीत।
निर्झरों के फेन जैसे।
विमल जल शिला धुने।।

गीत भेदभाव भेद।
कह रहा मनुष्य एक।
कष्ट गल पिघल बहे।
जी उठे मुर्दा सुने।।

प्रीत का अखूट घट ये।
स्नेह छाँव अखै वट ये।
मितवा मन-ममोलिये ने।
गीत मखमली बुने।।



अँगना बरसे फुहार

अँगना बरसे फुहार।
उपवन शीतल बयार।
विटप शाखा हिलत मन्द।
लता संग रत विहार।।

शिखी करत नृत्य अभय।
कोकिल है मौन सभय।
पंक भरे पथ दुरूह।
निशिदिन दादुर पुकार।।

दीपक-लौ घेरि-घेरि।
भ्रमत कीट फेरि-फेरि।
रजनी को रूप रसिक।
मेघ भ्रमत नभ अपार।।

नभ मयंक मेघ लुप्त।
विद्युत से वात गुप्त।
ज्योति मिले ज्योति संग।
मेघ बरस धार-धार।।



पौष-माघ हिम-तुषार

पौष-माघ हिम-तुषार।
शीत लहर बार-बार।
ठिठुरन से विकल बदन।
जन-जन तन वसन भार।।

विटप पीत पात झरत।
पंछियन के नीड़ ठरत।
वदन पंख में समेटि।
चीं-चीं चूं-चूं पुकार।।

धुंध-धुंवर का प्रकोप।
रवि भये ता ओट लोप।
हैं उदास लोग सबहिं।
बार-बार नभ निहार।।

कफ प्रकोप से निढ़ाल।
घर-घर में वृद्ध-बाल।
सेज, धूप या अलाव।
शरद काल में आधार।।



स्नेह-नीर भरे कुम्भ

स्नेह-नीर भरे कुम्भ
शनैः-शनैः रीत गये
समय अब कहां सहज
सहज दिवस बीत गये।।

सूने घर ज्यों कपोत
दीपक ज्यों बिना जोत
संवेदन शुष्क हुआ
कौन लिखे गीत नये।।

अंतस आँगन उदास
कविता भरती उसाँस
छन्द कमल-नाल तोरि
उज्जर गज जीत गये।।

भाव-गीत स्वप्न हुआ
जीवन व्यापार जुआ
निशाकाल ठहर गया
अब उलूक मीत भये।।



विकास की डगर

चल पुरुष विकास की डगर।
निर्माण ही संसार का सफर।
इष्ट हो कि शान्ति से रहें।
दिल मोहब्बत से हो तर-बतर।।

मित्रता के रास्ते बुहार।
एकता के हों गले में हार।
डूबते हुओं की नाव बन।
हार जाए सिंधु के भँवर।।

हर किसी के हाथ में हो काम।
हर किसी के धर्म को सलाम।
क्रूस को कुदाल मान कर।
कर्म-क्षेत्र में खरा उतर।।

भय को त्याग राह पर चलो।
लक्ष्य वेध कर ही साँस लो।
श्रेष्ठता की चोटियाँ चढ़े।
हो गये हैं वे ही नर अमर।।



उठ रे साथी

उठ रे साथी हो गयी भोर
बढ़ा कदम मंजिल की ओर।।

पथ के पहरन ऊबड़ खाबड़।
कहीं हैं काँटे कंकड़ दलदल।
कहीं मील के पत्थर बैठे।
थके हुए-से हारे निश्चल।
नभ के अवरोधों का भय क्या।
तेरी पहुंच क्षितिज का छोर।।

ज्वालामुखी फटेंगे पथ में।
धरा कम्प क्या कम होंगे।
हो सकता है गिरें बिजलियाँ।
मृगतृष्णा के भ्रम होंगे।
पर फिर भी आयेगा वो दिन।
जब नहीं प्यासे रहें चकोर।।

कर्म-द्वार पर तुम्हें पुकारे।
अंतस कहे नींद से जाग।
तेरे श्रम के बिन्दु पीकर।
चमक उठा धरती का भाग।
तेरी थाह समुन्दर जैसी।
मन तेरा सावन के लोर।।



अब तक नहीं अँधेरा भागा

अब तक नहीं अँधेरा भागा।
दीपक प्रतिदिन सहस जलाते।
भीतर के तम को हरने को।
प्रेम-ज्योति अंतस उजियाते।।

भीतर का अँधियारा गहरा।
कब तुमने पहचाना इसको।
सोमवती मावस की जगह।
एक शरद-पूनम बन जाते।।

उल्का बनकर छिटके नभ से।
पर पहुंचे भू तक भी कब तुम।
कितना अच्छा होता तप कर।
ध्रुव बनकर टिमटिम मुस्काते।।

खुद जल-जल कर भस्म हो गये।
जैसे दावानल से जंगल।
अग्निपुंज होना ही था तो।
सूरज बनकर नभ पर आते।।



मन मेरा पानी-पानी

मन मेरा पानी-पानी
मन मेरा पानी-पानी

कभी सरोवर कभी समन्दर
रमता लहर-लहर के अन्दर
अनहद नाद बना निज पौरुष
साज साजिन्दा सुर-ज्ञानी।। मन मेरा.....

हिम बन बसा हिमालय जाकर
पिघल बहा तन मोह मिटा कर
निर्मल जल सरिता बन उतरा
कर्म योग का अभिमानी।। मन मेरा....

नभ में मेघ, मेघ में बिजुरी
घटा-टोप सावन की कजरी
विचरत, बिछुरत, पुनः अवतरित
मेटत प्यास प्राण-दानी।। मन मेरा....

वाष्प-रूप जग दाह झेलता
गगन बीच अनिकेत खेलता
बूँद-बूँद का खेल अनोखा
कदली, मोती, रस खानी।। मन मेरा....



है तलाश घर की

दोस्तो मिले मकान ही मकान है।
है तलाश घर की, जीव परेशान है।।

जूझना ही जूझना है इस तलाश में।
साँस-साँस होमते हैं लोग आस में।
इस घड़ी की धड़कनों में घर तलाशिये।
उतर जाइये दिलों में छोड़ हासिये।
प्रेमबद्ध पंचभूत प्राणवान हैं।। है तलाश....

घर तो घर है दोस्तो, है प्यार का वितान।
जिस तरह सभी को धारता है आसमान।
रोशनी विना हिये अंधेर ही अंधेर।
दे नहीं सके तो फिर फकीर है कुबेर।
छाँव के तले ही धूप के निशान हैं।। है तलाश....

कोंपलों की पत्तियों को मत उखाड़िये।
खिल रही कली के तन की रेत झाड़िये।
जब सुगंध और रस नहीं समाज में।
क्या धरा है चादरों की छद्म लाज में।
स्नेह लुट गया तो खण्डहर जहान है।। है तलाश....



बहुत भीगा आज मन

निर्झरों के जल नहाया। बह रही सरिता में धोया।
बरसते बादल भिगोया। बहुत भीगा आज तन।
बहुत भीगा आज मन। बहुत बरसे हैं नयन।।

सफलता क्या विफलता क्या। क्या कमी है विपुलता क्या।
निर्बली क्या सबलता क्या। द्वन्द्व की दहती तपन।
बहुत भीगा आज मन। बहुत बरसे हैं नयन।।

दुःख रोया सुख रुलाया। जय-पराजय भय सताया।
लाभ-हानि का थकाया। चित्त चिन्ता की दहन।
बहुत भीगा आज मन। बहुत बरसे हैं नयन।।

यादगारों के ये पुतले। अधजले कुछ एक उजले।
मन-पटल ने बहुत उथले। अंतहीन ये सघन वन।
बहुत भीगा आज मन। बहुत बरसे हैं नयन।।

तन व्यथित हो रुदन छेड़े। मन व्यथित लखि मृत्यु बेड़े।
आत्म-तत्त्व असंग है रे। क्या करेंगे प्रलय घन।
बहुत भीगा आज मन। बहुत बरसे हैं नयन।।



झीनी चादर बुनी कबीरा

झीनी चादर बुनी कवीरा, ओढ़-ओढ़ हुई लीरा-लीरा।

वाहर आंधी धूल चीकनी, चादर हो रही मैली-मैली
मन के पोखर मैला पानी, सुरता धोवन असमंजस में
पटक पछाड़े चादर निवड़े, चादर विना ढ्वूँ तन कैसे
अंतस खोद सोध निर्मल जल, झवळ झवळ कर धोय फकीरा।
झीनी चादर वुनी कवीरा, ओढ़-ओढ़ हुई लीरा-लीरा।

तन सारंगी सुर में रंगी, विना गुरु गज कृपा न वाजै
गज सों मिलन परस पोरन की, नाद हुवे जव अंतस जागे
अंतस में जय उठे तरंगें, चित चेते मन-मानस न्हावे
मन-मराल मोती चुग लावे, नीर-क्षीर को ज्ञान गंभीरा।
झीनी चादर वुनी कवीरा, ओढ़-ओढ हुई लीरा-लीरा।

वट की छांव कवहु नहीं वैठे, जा खजूर ढिग छाया चाहे
विना प्रेम के द्वेष न जावे, विना दीप कव जात अंधेरा
विना तपे कंचन नहीं सुधरे, विना तपे तन-ताप न जासे
सूरज तो अस्ताचल पहुंचा, छोड़-छाड़ अव तेरा-मेरा।
झीनी चादर वुनी कवीरा, ओढ़-ओढ़ हुई लीरा-लीरा।।



उड़ता पंछी बहता पानी

उड़ता पंछी बहता पानी, मीत न प्रीत बात जग जानी।।

जगत सरोवर विटप तीर पर, नीड़ शाख पर पंछी चहके
अण्डे सेवत रचे जीव धन, पालत-पोषत हृदय प्रफुल्लित
फुदक-फुदक जब शाखा बैठे, शाख हिंडोले झूला झूले
झूलत-झूलत पंख पसारे, व्योम असीम असीम उड़ानें
यह निर्लेप जीव निर्बन्धन, तूं क्यों रोवे शाख दीवानी
उड़ता पंछी बहता पानी, मीत न प्रीत बात जग जानी।।

पिघल हिमालय सरिता फूटे, यौवन के मद उफनी जावे
शिला-खण्ड तरु-खण्ड बहावे, भू भेदे मनमाफिक धावे
यह द्युति रूप महा चंचल तन, निज अस्तित्व दर्प से रंजित
सिन्धु तीरे तजत शरीरे, गर्व गलित मुख कटु अरु पंकिल
गति दुर्गति विवेक आधीना, पथिक पिछानै पथ की वानी
उड़ता पंछी बहता पानी, मीत न प्रीत बात जग जानी।।

शब्द हवा में, हवा व्योम में, व्योम ब्रह्म में सब कोई जाने
यत्न बिना कोई कैसे पहुंचे, बिन पहुंचे आनन्द अधूरा
धोये बिना मैल नहीं छूटे, बिना चले मंजिल नहीं आवे
बिना अन्न के भूख न नासे, बिना नीर के प्यास सतावे
अंतस निशा ज्ञान सों नासे, अनुभव, ज्ञान सदा वरदानी
उड़ता पंछी बहता पानी, मीत न प्रीत बात जग जानी।।



वो घर-आँगन कौन बुहारे

जो अंतस के द्वार न खोले सूरज की तिड़की ना झेले
वो घर-आँगन कौन बुहारे।।

बन्द द्वार में घुटे अंधेरा रहे अमावस डेरा डाले
आँखें व्याकुल पराधीन-सी भय की चमचेड़ें मँडरावे
मन मारीच करे ऐय्यारी राम भागता मृग के पीछे
हाथ लगे केवल मृग-माटी घर की लक्ष्मी रावण लूटे
फैला जाल काल आहेरी हँस-हँस कहता भले पधारे
वो घर-आँगन कौन बुहारे।।

करे मनोरथ भस्मासुर-से मृत्यु-भय भगिनी-सुत मारे
विधना लिखी कपाल वांचकर उस अनंत की हँसी उड़ावे
गहन तमस भीतर घुट-घुट कर कृष्ण-घटा-सा घुटता जावे
कभी जटायु के पर काटे कभी विभीपण को दुत्कारे
घर-भेदी लंका ले जावे अंगद को उपदेश वघारे
वो घर-आँगन कौन बुहारे।।

मामा बनकर पासा फेंके जन्म-अंध कोऊ पट्टी बांधे
नयन मूँद अँधियारा न्योते फिर भी भीष्म पिता कहलावे
कितना घोर अंधेर पक्ष है मावस का कोई अंत नहीं है
जिस ग्वाले ने कंस पछाड़ा उसकी बात अंग नहीं लागे
निज मस्तक काटे अरु होमे उसका खर-सिर कौन उतारे
वो घर-आँगन कौन बुहारे।।

गाड़ी वाला रैक्व बने विन सृष्टि-भेद समझ नहीं आवे
बाहर-भीतर एक हुवे जब सब कोई अपना-अपना लागे
विस्मय से सारा जग उपजे विस्मय-विस्मय के आधीना
विस्मय से विस्मय मिलकर ही विस्मय को भलभांति पिछाने
खोले विना बन्द दरवाजे कैसे भीतर हो उजियारे ?
वो घर-आँगन कौन बुहारे।।



अब तो मेरा कहा कीजिए

अब तो मेरा कहा कीजिए।
गगन-सिन्धु मथ नभमणि लाया।
आत्म-सिन्धु मथ अमृत लाया।
भव-सागर ने प्रेम सिखाया।
हाथ पसार-पसार लीजिए।
अंजलि भर-भर अमी पीजिए।
अब तो मेरा कहा कीजिए।।

कूर्म समान संकुचित क्यों हो।
अण्डा ही ब्रह्माण्ड नहीं है।
चोले से बाहर भी जग है।
अंतस को विस्तार दीजिए।
व्योम-समान असीम कीजिए।
अब तो मेरा कहा कीजिए।।

जलनिधि अवनी की सीमा में।
पवन पृथ्वी की बनी ओढ़नी।
तारों की टिमटिम की भी हद।
उससे आगे दृष्टि कीजिए।
खुद से खुद तो मिला कीजिए।
अब तो मेरा कहा कीजिए।।

सूरज, चाँद, सितारे बालक।
नभ के आँगन सदा खेलते।
तुम असंख्य रवि, शशि के सर्जक।
निज पाँवों से नाप लीजिए।
वामन बनकर भ्रमण कीजिए।
अब तो मेरा कहा कीजिए।।



निशा की आँख

चल पुरुष उठा के पाँव रास्ता कहे।
जो खड़े बुतों से, लक्ष्य ताकते रहे।

मेरे साथ चल अगर है मंजिलों से प्रेम
तेरे पाँव चूम कर वहूँगा योग-क्षेम
हम धरा की नाड़ियाँ चलने में रत रहीं
जो चला हमारे साथ चूकता नहीं
मन की रास को विवेक थामता रहे।

हाथ में कमान-तीर लक्ष्य वेध ले
लक्ष्य के ही साथ लक्ष्य-विंव देख ले
धूप-छाँव की तरह ही लक्ष्य घूमता
है निपुण वही जो विम्व देख वेधता
शब्द-वेध, विम्व-वेध, लक्ष्य वेध ले।

तुम निशा की आँख हो मयंक की तरह
तुम धरा उवारलो वाराह की तरह
वैसे तो ये जगत-सिंधु खार से भरा
मथ के रत्न लो निकाल बनके मन्दरा
काल है प्रवृत्त कर्म यं यजामहे।



राह-राह बोवो फुलवारी

उषा सूरज की किरणों की
कर में थामे कनक बुहारी
निशि का तमस बुहार, मचलती
तेरा सहन बुहारन आयी।

तजो निराशा की शैया को
नयन उघार जगत को परखो
श्रम से कर्मयोग को सींचो
राह-राह बोवो फुलवारी।

नभपथ पंछी चले कतारें
अनुशासन के गीत सुनावें
एक साथ रहकर जीने की
मनु के बेटों करो तैयारी।

कुदरत के उत्पात् घनेरे
जीवन वैसे भी दुविधा में
परदुःख ले-ले राम वही है
परसुख छीने आतत्ताई।



बनना है तुमको बनवारी

जग के कलुष बुहारन खातिर।
हिम्मत की तूं उठा बुहारी।
विहग ऋचाएँ बोले नभ में।
भोर भयी उठ कर तैयारी।।

युग के शिखर बैठ सम्पाती।
पंख जरे पर दूरदृष्टि तुम।
खोजो कहां जानकी कलपे।
क्यों पट्टी बाँधी गांधारी।।

नर-नारी में समता वाली।
बात आदमी कैसे भूला।
हे मनु सतरूपा हो सबली।
तो जानूं सच्चा संसारी।।

विष-बीजों ने पौध विगाड़ी।
खरपतवार पनपने मत दो।
कमल गुलाब चमेली सींचो।
महक उठे पूरी बगिया ही।।

द्वापर के यमुना जल वासी।
नाग कालिये बाहर आये।
इन्हें नाथ कर वश में करने।
बनना है तुमको बनवारी।।



प्रज्ञा परम प्रभात

किसकी जोवे वाट बटोही
किसकी जोवे वाट
यह पथ पार अकेले करना
प्रज्ञा परम प्रभात
बटोही किसकी जोवे वाट।

नीली छतरी सिर पर ताने
जैसे सूरज निज पथ चाले
ग्रहण ग्रसे तो भेदे पल में
छाया माया जाल
बटोही किसकी जोवे वाट।

तूं संकल्प-सिद्ध रचना है
भय अरु अभय तेरे उपजाए
तूं चाहे विराट को सिरजे
पलक झपे लोपात
बटोही किसकी जोवे वाट।

काल न बँधे सदा समरस तूं
तन का बन्धन कभी न माने
वामन बन नापे तिरलोकी
काल सुमरनी हाथ
बटोही किसकी जोवे वाट।



भीतर से भोगल जड़ बैठा

कमरे के अंधे कोने में।
जीवन बीता बस सोने में।
खिड़की कभी नहीं खोली उठ।
लगे रहे यों तम बोने में।।

किरणों ने जब दस्तक दी तो।
आँखें मूँदे पड़े रहे तुम।
मधुर गीत ले पवन चली तब।
तुम तो व्यस्त रहे रोने में।।

भीतर से भोगल जड़ बैठा।
करे पुकार द्वार तो खोलो।
रोशनदान खोल अंतस का।
होगा सफल तमस धोने में।।

जग जंजाल बुने वो मकड़ी।
इतना कठिन अभेद नहीं है।
प्रज्ञा दसन उसे काटेंगे।
देर कहाँ स्वतंत्र होने में।।



ऐ सलोने वतन!

ऐ सलोने वतन, ऐ जमीने वतन!
तू ही माता-पिता, तू ही भाई-बहन।
तेरी मुस्कान से जिन्दगानी मेरी।
तेरे आंचल की खुशबू ही साँसें मेरी।
जान जाये तो जाये हमें इससे क्या।
होने देंगे नहीं तेरा दामन हरन।
ऐ सलोने वतन, ऐ जमीने वतन।।

छेड़खानी हिमालय में कैसे सहें।
विषधरों को थैली लाँघने कैसे दें।
छीनना चाहे कोई अम्न मुल्क का।
उसके नामोनिशाँ को मिटा देंगे हम।
ऐ सलोने वतन, ऐ जमीने वतन।।

तेरी मिट्टी उठा करके करते परन।
दफ्न कर देंगे उनके इरादों को हम।
तेरी औलाद फौलाद है भीम-सी।
ये सितारों सहित नोच लाते गगन।
ऐ सलोने वतन, ऐ जमीने वतन।।

बदनीयत से अगर कोई आया इधर।
पाँव अंगद-सा रोपे खड़े कस कमर।
जीत के ही सदा जश्न हमने किये।
रोज उठते हैं सिर पर लपेटे कफन।
ऐ सलोने वतन, ऐ जमीने वतन।।



देश प्यारा प्राण से

ऐ सिपाही ले तिरंगा हाथ में बढ़ते चलो।
विजय का अरमान ले, बढ़ते चलो बढ़ते चलो।
वादी-ए-कश्मीर में गर नाग आयें रेंग कर।
कुचल डालो फन विषैले, शान से बढ़ते चलो।।

चल बुलाते हैं तुम्हें हिमवान के ऊंचे शिखर।
सामने आ जायँ वो मिट्टी में मिल जाएँ बिखर।
मुल्क तेरे साथ है जैसे बदन पर हो लिबास।
जा भिड़ो गर मौत भी हो सामने, बढ़ते चलो।।

तोप बन शमशीर बन बन्दूक बन तिरसूल बन।
शब्द-वेधी तीर बन या बन मिसाइल उड़ गगन।
आग बन कर बरस उन पर और कर लंका-दहन।
हाथ में लेकर गदा हनुमान-से, बढ़ते चलो।।

बिजलियां बनकर गिरो तुम दुश्मनों के ठाम पर।
याद आये उनको नानी इण्डिया के नाम पर।
फिर कभी इस तरफ आने की भी हिम्मत हो नहीं।
देश प्यारा प्राण से बढ़ते चलो बढ़ते चलो।

ऐ सिपाही ले तिरंगा हाथ में बढ़ते चलो।
विजय का अरमान ले, बढ़ते चलो बढ़ते चलो।।



इस वतन के लोग थे

दीप-वाती हाथ में लेकर भटकते विश्व को।
दीप को रोशन किया वो इस वतन के लोग थे।।

हमने हिंसा को हराया था अहिंसा-अस्त्र से।
हँस के फांसी पर चढ़े वो इस वतन के लोग थे।।

क्रूरता सौगात में पायी अनेकों वार पर।
अशोक को गौतम किया वो इस वतन के लोग थे।।

एक चश्मा, एक धोती, एक लकड़ी हाथ में।
एक गांधी रच दिया वो इस वतन के लोग थे।।

जब बुजुर्गों ने कहा तो उचित-अनुचित क्या हुआ।
वचन पालन बन गये वो इस वतन के लोग थे।।

पुरुष थे प्रह्लाद जैसे नारियां सीता सरिस।
आग से भी दोस्ती वो इस वतन के लोग थे।।

जब मोहब्बत मौत के आगोश में जा सो गयी।
"ताज" का साया दिया वो इस वतन के लोग थे।।

एक 'डायर' था जो रावण बनके आया बाग में।
गोलियां सीने पे ली वो इस वतन के लोग थे।।

एक पन्ना एक लक्ष्मी एक थे राणा प्रताप।
इस जमीं पर मर मिटे वो इस वतन के लोग थे।।



हिन्द जैसा कोई भी कहाँ है

सितारों से आगे जहाँ और होगा
मगर हिन्द जैसा कोई भी कहाँ है
ये मेरा जहां है, ये मेरा जहाँ है।।

हिमालय के सिर से गली वर्फ का जल
समन्दर के सीने की आतप मिटाए
उठी घाटियों से जो केसर की खुशबू
है पूरे वतन पर सुगन्धी के साये
प्रदेशों ने गूंथा कलेवर वतन का
चरण में समन्दर ने मोती बिछाए
गगन इसका हंसों के कलरव से गूंजे
कहीं और पूनम-सी रातें कहां हैं।। सितारों से....।।

पावस में नभ में विचरते जो बादल
वो यक्षों की नगरी की छत पर उतरते
प्रिया को समाचार प्रिय का बताकर
पुनः राह चलते जमीं पर बरसते
धरा को सजाते हैं दुल्हन-सा ऐसा
कि भूमि पे आने को भगवन तरसते
वो औघड़ तो बैठा है वट के तले ही
बता ऐसा त्यागी, जोगी कहां है।। सितारों से....।।

सोने का सूरज यहां नित प्रकासे
सितारे यहां पर करें रातवासा
तिरंगा हवा को दिशाबोध देता
शहीदों की यादों से भागे निराशा
इसी धूल-मिट्टी से गढ़ते हैं जीवन
इसे सौंप देने की हर पल पिपासा
अन्धे युगों में भी चलता रहा जो
ऐसा बटोही कोई भी कहां है।। सितारों से....।।



राष्ट्रहित में प्राण दो

शूल राह के चुनो।
आग में शमन करो।
पांव के आघात से।
नवीन पथ सृजन करो।।

बढ़ो तो लक्ष्य की तरफ।
उठो व जागते रहो।
सुदीर्घ बाहुदण्ड में।
परचम ले भागते रहो।।

आवाहन ऐसा करो कि।
लोग जान पर भी खेल लें।
वज्र के आघात को भी।
देह तेरी झेलले।।

महान कर्म तुम करो।
महान भावना रखो।
द्वन्द्व से ऊपर उठो।
अलख को प्रेम में लखो।।

बनो तो मित्र राम-से।
शरण पड़े को त्राण दो।
मोह, भय को त्याग कर।
राष्ट्रहित में प्राण दो।।



अपने वतन के वास्ते जीना

तमन्ना है दिली, अपने वतन के वास्ते जीना।
जरूरत आ पड़े तो, ऐ वतन! मंजूर है मरना।।

हिमालय बन करूं अभिषेक, दिल में यह तमन्ना है।
तेरी रग-रग में गंगा बन, मुझे तो नित्य बहना है।
बजे नदियों की कल-कल में, सदा जयहिन्द की वीणा।।

शहीदों की शहादत, देश की अनमोल थाती है।
भगतसिंह को लगी फांसी की, अब भी याद आती है।
हिदायत नौजवानों को, वतन की आबरू रखना।।

मेरा यह देश तो, सारे जहाँ का ताज है यारो।
मिसालें हैं कहां पूरे जहाँ में, देश की यारो।
समन्दर गर्जना कर, कह रहा है जागते रहना।।

कोई हिन्दू न मुस्लिम, सिक्ख, जैनी, बौद्ध, ईसाई।
सभी की माँ है भारत माँ, सभी आपस में हैं भाई।
लहू के रंग की लाली, कभी बदरंग ना करना।।

पड़ौसी ने वतन के मुंह पे, खूनी हाथ मारा है।
वतन यह पूछता सन्तान से, क्या यह गवारा है?
उठो, जागो, बढ़ो आगे, हिफाजत देश की करना।।



सागर-मन्थन

सबल देह हो निश्छल मन हो। दुःखी जनों हित हृदय तपन हो।
जनहित में विष भी पी लेवें। ऐसा जन-जन के मन प्रण हो।।

द्वेष-अग्नि की दाह मिटाओ। प्यार का मरहम लेप लगाओ।
घृणा और घोटाले त्यागो। लोभ, दम्भ को दूर भगाओ।
भाईचारे के मोती हित। वैरभाव-सागर मन्थन हो।।

छल त्यागो विश्वास जगाओ। हिंसा का हड़कम्प विनाशे।
भूमण्डल का मिटे अन्धेरा। जीवन ज्योति मयंक प्रकाशे।
ले उत्साह बढ़ो तुम आगे। प्रातः भानु उदित आँगन हो।।

जब खोजोगे तब पाओगे। खान कोयले में भी हीरे।
मिल जाते हैं अडिग वृक्ष वट। उफनी हुई नदी के तीरे।
उड़ने वाले रुक न सकेंगे। चाहे, कितनी तेज पवन हो।।

परहित में शूली पर चढ़लो। या कन्धे पर क्रूस उठालो।
देव दनुज के हित-साधन में। कालकूट को गले लगालो।
लोग देश हित मरे-मिटे हैं। तेरे मन भी यही लगन हो।।



श्यामा बदली

धीरे-धीरे चलो।
सहमी-सहमी चलो।
झुकती-झुकती चलो, श्यामा बदली।
लोग कहते हैं तुम ही हो कजली।।

तुम सरकती हुई जा रही हो कहाँ ?
चाँद-तारे लिए मैं तो बैठा यहाँ।
मैंने बिजली की तेरी बनायी चूनर।
ओढ़लो फिर ठुमकती चलो बन-सँवर।
चमचमाती चलो।
गीत गाती चलो।
मन लुभाती चलो, श्यामा बदली।
लोग कहते हैं तुम ही हो कजली।।

मुझको भी साथ लेकर चलो ना प्रिये।
एक से दो रहेंगे सफर में भले।
साथ चलने की नन्हीं-सी है आरजू।
कितनी मिन्नत पपीहा करे तूं-ही-तूं।
बस लरजती चलो।
कुछ गरजती चलो।
रुक, बरसती चलो, श्यामा बदली।
लोग कहते हैं तुम ही हो कजली।।

तुम तो अमृत का जैसे सरोवर ही हो।
भूमि पर अब बरसने को आतुर ही हो।
क्यों नहीं अब मेरी बात को मानलो।
मेरी गोदी में बरसो अगन शान्त हो।
बुंदिया-बुंदिया चलो।
धारा-धारा चलो।
सरिता बनके बहो, श्यामा बदली।
लोग कहते हैं तुम ही हो कजली।।



वर्षाकुमारी

मेघ के रथ की सवारी, कर चली वर्षाकुमारी
विजलियों के अश्व रथ के, व्योम के मग में विचरती।।

कौन जाने किस ठिकाने, हो रहा होगा स्वयंवर।
भूमि के किस लाडले को, वरण कर होगी प्रफुल्लित।।

बज उठेंगे गगन के पथ, गड़गड़ाहट के नगाड़े।
मोतियों की झालरों के, व्योम में धू-पथ बनेंगे।।

और वह सहमी-लजाती, पवन से मिल गीत गाती।
ठुमकती ठिठुरी हुई-सी, सिमटती सिकुड़ी हुई-सी।।

शर्म से गड़ती हुई-सी, भूमि पर पड़ती हुई-सी।
वो सुकोमल गात वाली, हो गयी पानी ही पानी।।

पाश में भू-खण्ड को भर, मिट गयी तन को वलय कर।
वह मिलन का सुख मनोरम, हरीतिमा का वस्त्र लेकर।।

प्राण-प्यारे को सजाकर, फूल-कलियों को लुटाकर।
तितलियों का मन लुभाती, गीत भौंरों से पढ़ाती।।

हम सभी को खींच लेती, दृष्टि का मग रोक लेती।
चेतना को प्राण देती, वीणा वाणी को थमाती।।

विवश करती है मुझे वह, शब्द से मुझको सजा दो।
गीत से मन-प्राण भर दो, दिग्-दिगन्तों को गुंजा दो।।

मैं मनुज की जीवनी हूँ, मैं मनुज की प्रेयसी हूँ।
मैं तुम्हारी तृप्ति का घट, मैं तुम्हारे प्राण का वट।।

हिम-शिखर पर मैं पली हूँ, प्राण सरसाने गली हूँ।
मैं ही सरिता बन वही हूँ, मैं सरोवर में वसी हूँ।।

सिन्धु-तन विस्तार मेरा, वाष्प बनकर व्योम घेरा।
भूमि पर नाचूं मैं रिमझिम, पारदर्शी गात-धारी।।

मैं जगत को प्राण देती, प्राणियों को त्राण देती।
अन्न की जननी कहाती, भूख को भोजन दिलाती।।

रे कृषक! क्या सोचते हो? क्यों प्रतीक्षा में खड़े हो?
लो, उतर आती हूँ भू पर, मोतियों की डोर लेकर।।

सरसराहट-रिमझिमाहट, तड़तड़ाहट-गड़गड़ाहट।
चमचमाहट में उतर कर, मेघ का रथ त्याग कर के।।

अंक में आयी मैं तेरे, छँट गये अब तो अँधेरे।
बीज बो दे जनक बन जा, अन्न-शालाएँ भरे जा।।

युग-युगों तक श्रम किये जा, गीत मेरे ही कहे जा।
रस बिना जीवन नहीं है, सरस हो घुल-घुल के जी ले।।

चोंच-भर पानी तो पी ले, ठहर जा कर होंठ गीले।
सब तरफ फैली मधुरता, आज तूं भी मधुर हो ले।।

प्रिय, मेरे आगोश में आ, देह, मन के मैल धो ले।
करुण बन जा, मित्र बन जा, प्यार के दो शब्द कह जा।।

रिमझिमाहट में नहा ले, झिरमिर-झिरमिर गीत गा ले।
आज तो हँसले-हँसाले, संग मेरे नाच-गा ले।।

भूमि पर वर्षाकुमारी, पावसी ऋतु की दुलारी।
बाँह फैलाए खड़ी है, स्वागतम हो, स्वागतम हो।।



चाँदनी

मधुसिक्त हिमनद-सी बरसती चाँदनी।
आभा-भरी द्युति-सी चमकती चाँदनी।।

गगन मण्डल में रजत जल सिन्धु से
जब उतरती रात में वह भूमि पे
लिपट जाती प्रिया-सी विधु-नन्दिनी
मधुसिक्त हिमनद-सी बरसती चाँदनी।।

दग्ध तन-मन-हृदय को शीतल करन
निशाकाले भूमि पर रखती चरन
धन्य विधु का साथ पाकर यामिनी
मधुसिक्त हिमनद-सी बरसती चाँदनी।।

ऋतु कोई हो सदा शीतल-स्निग्ध है
बिना इसके यामिनी अभिशप्त है
भू, गगन शोभा निशा में चाँदनी
मधुसिक्त हिमनद-सी बरसती . चाँदनी।।



मन

परिन्दों की मानिन्द उड़ता है मन।
हिमालय की हिम-सा पिघलता है मन।
कमल-सा सरोवर में खिलता है मन।
हुई साँझ सूरज-सा ढलता है मन।।

सुनी आह कोई तो जलता है मन।
हुई हार तो हाथ मलता है मन।
मरघट पे जाकर बदलता है मन।
लगी ठोकरें तो संभलता है मन।।

मिले माँ की गोदी तो सोता है मन।
मिले कोई प्रेमी तो खोता है मन।
मित्रों से बिछुड़े तो रोता है मन।
कभी शूल में फूल बोता है मन।।

नाचूँ तो पायल में बजता है मन।
गाऊँ तो सुर में संभलता है मन।
तिजोरी में लक्ष्मी-सा पलता है मन।
प्रणय पा के अंबवा-सा फलता है मन।।

हुई दूरियों को मिटाता है मन।
पड़ी खाइयों को सटाता है मन।
तेरे-मेरे दुःख को बँटाता है मन।
पड़े वक्त तो काम आता है मन।।



मैं तमस से लड़ रहा हूँ

आदमी से कब लड़ा मैं, मैं तमस से लड़ रहा हूँ
तामसी को मारने की बात, कब मैं कर रहा हूँ।

तामसी तो राम ने अरु, कृष्ण ने भी बहुत मारे
पर तमस ने आदमी को, आज तक छोड़ा कहां है।

इसलिए मित्रो! धनुष तोड़ा, शरों को फेंक कर के
एक तरकस में भरे हैं, बहुत-सारे सूर्य मैंने।

पीठ पर तूणीर बांधे, उन अँधेरे जनपथों पर
बाँटता हूँ सूर्य उनको, नयन मूँदे जो खड़े हैं।

भास्कर, दीपक, सहायक, बाह्य आँखें जब खुली हों
बन्द आँखें खोलने के, सूर्य लेकर मैं चला हूँ।

है मुझे विश्वास, मेरे सूर्य, खोलेंगे मुँदे दृग
और अंतःचक्षुओं के, आँगने का तम हरेंगे।

भेदकर काले वलय को, रश्मियों के कर सुकोमल
खोल देंगे नयन खिड़की, रोशनी से मन भरेंगे।

तब ही तो भीतर उपजते, कंस, रावण-से अँधेरे
रोशनी में विलय होकर, स्वयं सूरज बन सकेंगे।।



यह शहर घर-सा लखाए

है खड़ा मेरा शहर पलकें बिछाए।
जो यहां आया उसे घर-सा लखाए।।

लोग आये और बसते यों गये कि।
इस शहर को हर कोई अपना बताए।।

सम्प्रदायों को यहां की एकता ने।
एक गुलदस्ता बनाकर दिल सजाए।।

नाजनीनें, गुलबदन, गुलरंग चेहरे।
एक घूंघट, एक बुरके में लजाए।।

प्यार के बन्धन अटूटे, अमर अक्षय।
पंच तत्त्वों से बंधे, खोले न जाए।।

चासनी, मिश्री, मतीरों-से मधुर जन।
शहर सबकी जिन्दगी मीठी बनाए।।

रिज़्क बीकानेर में सन्तोष मन का।
बस गया सो बस गया, छोड़ा न जाए।।



धूप की तपिश

स्मृतियों का जंजाल/शैवाल ही शैवाल
और, उस पर/फिसलते, डगमगाते, उचकते,
घटनाओं के पाँव।
सभी, बेतरतीब
कबाड़खाने के/मकड़जाल में उलझे-से,
या, फुटपाथ पर/करवट बदलते यौवन-से,
असुरक्षित।
फिर भी, न जाने
मन क्यों/कभी-कभी
मधुमक्खी सा/मिठास बटोरने में व्यस्त।
कहीं से लूटता/कहीं जमा करता
और फिर
किन्हीं स्वार्थी/हाथों से लुटता।
अनवरत खेल।
और इसी खेल में
उम्र को/सोपान-दर-सोपान
पीछे ढकेलता, थकता,/ठूंठ हो गया तन
उस पर भी,/धूप की तपिश।
लुटने की कोई सीमा नहीं
फटे वस्त्र से/गुदड़ी तक
और उस पर
विश्राम का सुख भी/कुछ भी

नष्ट कहां होता है/कुछ न कुछ
कहीं न कहीं/हमेशा रहता है
यही, अमरत्व है।
निर्माण, ध्वंस/फिर निर्माण
यही अजरत्व है।
वैसे/जो कुछ ज्ञात है
सब निराधार है
इसलिए/आधारभूत को खोजना ही
एक छलावा है।
सब कुछ/लटका हुआ है/शून्य में
सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, नक्षत्रों की भांति।
प्यार, भाईचारा,/मैत्री, क्षमा, दया,/सान्त्वना, शील, प्रसन्नता
सभी, मन में लटकते भाव हैं
क्रियाएं भिन्न हैं
वैसे ही, जैसे,/निरपेक्ष, सापेक्ष से भिन्न है।
इनके बीच में भी कुछ है
राम से रावण तक
कृष्ण से कंस और दुर्योधन तक
हिरण्यकशिपु से नृसिंह तक
हनुमान, सुग्रीव,/भरत, विभीषण,
द्रोण, भीष्म, प्रह्लाद,/बहुत कुछ हैं बीच में।
सीताहरण, होलिका,/द्यूत और द्रौपदी का चीर
तथा महाभारत भी/बीच में परिलक्षित होते हैं।
मैं भी/इन्हीं मार्गों से
यहां तक पहुंच गया हूँ
और ठहर-सा गया हूँ/एक ठूंठ-सा
शरशैया पर लेटे भीष्म की तरह
सूर्य के उत्तरायण की प्रतीक्षा में
धूप की तपिश तले।



पैबन्द वाला कोट

आशा की सूई में/विश्वास का धागा पिरोकर
जिन्दगी के, फटे कोट पर
एक पैबन्द/और टाँक लिया
और निकल पड़ा/एक और जिन्दगी खोजने
उस सड़क पर
जो/निराशा की तरह स्याह
मेरे सामने/लेटी हुई है/अपने तन पर
उपेक्षा की तिड़कन
और घृणा के गड्ढों के घाव लिए।
सड़क के किनारे/कुछ खुरदरे हाथ/नंगे पांव

तगारियों में/फावड़ा, गेंतियों में
हथौड़ों से तोड़े गये पत्थरों में
जिन्दगी ढूंढ रहे हैं/मेरी ही तरह।
वैसे ही कुछ लोग/अपने काँपते, ठण्डे हाथ
अलाव के चारों ओर/बैठकर ताप रहे हैं।
और अलाव के अंगारों में,
मटमैले धुएँ में,/अंगारों से झड़ती राख में,
जिन्दगी ढूँढ रहे हैं
आँख मिचमिचाते,/खाँसते, बीड़ी पीते,/बतियाते।
शहर की भीड़ में/हर आदमी
चाहे, एक-दूसरे को
खोया-खोया लगे,
पर, असल में वह
किसी न किसी/जिन्दगी की खोज में
व्यस्त है,/बेखबर।
शहर के उस पार/झोपड़पट्टी में
वर्षा में रिसते बसेरों में,
धूप छानती छतों के नीचे/पेड़ की छाँव तले,
अपनी एकमात्र पूँजी/अपनी उम्र-सी बूढ़ी
चरमराती खाट पर
किसी तरह बैठे/मनुष्य में
मैं जिन्दगी ढूँढ़ता रहा/और हर जगह
एक-एक पैवन्द टाँकता रहा।
एक दिन/अपनी आस्था की खूंटी पर
टंगा कोट देखकर/सहसा मुझे ऐसा लगा
यह कोट कहां है
बस, पैबन्द ही पैवन्द हैं
मेरी जिन्दगी की तरह।



सूर्योदय होने में कितनी देर है

छली काँटे,
पाँव के तलवे-/छेदने के लिए,
टोह लेकर बैठे हैं,/रास्तों के इर्द-गिर्द।
बारूदी सुरंगें/भूमिगत
किसी के पदचापों की/व्यग्रता से
प्रतीक्षा कर रही हैं।
हाथों की आजादी/छीन ली है
विवशता की बैसाखियों ने।
द्वन्द्व, तर्क, चिन्ता/और अहंकार के चौराहे पर
खड़ी एक, दिग्भ्रमित देह
चारों ओर/गर्दन घुमा-घुमा कर
प्रतीक्षा कर रही है/किसी निर्णय की
अर्से से।
भाग्य का लैम्प पोल
खोटा बल्ब/सिर पर लटकाए
पास ही खड़ा है/मौन।
पाँव तोड़कर/हाथों में
बैसाखियां थमा देने वाले
सामने से गुजर रहे हैं
पर, कोई किसी को/नहीं पहचानता,
अँधेरे में।
और,/सूर्योदय होने में
अभी कितनी देर है
यह, क्षितिज पर/कहीं, आभास नहीं हो रहा।



कुछ लोग, सब लोग

कुछ लोग
सब लोगों जैसे/नहीं होते
पर/सब-कुछ होते हैं/ये कुछ लोग
जो सब-कुछ होते हैं/सब लोगों के लिए
प्रकाश, प्राण/और हृदय की धड़कन
बन जाते हैं।
ये लोग/कोहरे से धुंधलाए
मनुष्यता के शीशे को
हवा बनकर/पोंछते हैं
और दृष्टि को/पारदर्शी जीवनपथ
दिखाते हैं
इन्हीं सब लोगों में से/ये कुछ लोग

कोयले से हीरे की भाँति/प्रकट होते हैं
और अपने प्रकाश-पुंज की/आभा से
सब लोगों का/पथ-प्रदर्शन करते हैं।
ये कुछ लोग/मनुष्यता को
बर्बरता के/मगरमच्छी जबड़ों से
वराह बनकर/बार-बार
खींच निकालते हैं।
तुलसी, सूर, मीरां,/कबीर, गौतम, महावीर,
जीसस और नानक बनकर/पोपते हैं
मनुष्यता को/अनवरत, अहर्निश।
यह धरती/अपने उदर के बाहर भी
सूखे पत्तों के/खड़खड़ाने की आवाज
और आँधियों की ध्वनि
शुकदेव और/अभिमन्यु की तरह
अपनी कोख में/सुनती है।
क्रौंच-युगल की/नील गगन से बरसती
पीड़ा झेलती है
और यही पीड़ा/रोशनाई बनती है
किसी वाल्मीकि के लिए/और कालान्तर में
लवकुश की वाणी से/वह चलती है
सरिता की तरह
समस्त भूतल को/स्वरों से सराबोर
करने के लिए
समस्त दिशाओं में
मानवीयता की/गूँज, अनुगूँज
बिखेरने के लिए
सब लोगों को/सत्पथ
दिखाने के लिए।



आश्वासन

शरद की रात
और ओढ़ने को/शीतल, झीनी
चाँदनी की चदरिया।
बिछाने को फुटपाथ
और खाने को/शीतलहर के थपेड़े।
एक उम्मीद का अलाव जलाए
जाग रहा हूँ/रात के सन्नाटे में।
जिजीविषा पर छा रहा है
उसाँसों का घनीभूत कोहरा
और धुंध/सफेद भालू की तरह
सामने खड़ी है
मैं, अपनी हथेलियों से
चेहरे को गर्माने की/कोशिश करता हुआ,
तलाश रहा हूँ/धुंध के उस पार
किसी ऊष्मा से भरी/प्रकाश की किरण को।
और इस तलाश में
अपनी ठण्डी देह की रगों में
गर्माहट महसूस कर रहा हूँ।
एक निःश्वास के साथ
सिर घुटनों पर टिकाकर
छाती की धड़कन सुनता हूँ
और सोचता हूँ/आश्वासन का कम्बल
फिर पा जाऊंगा
कल की रात के लिए।



भविष्य के भय का बेताल

भविष्य के भय का वेताल
कन्धे पर डाले/विक्रम की भांति/मनुष्य
वर्तमान रूपी दिन के उजाले से/सदा आतंकित,
रात की प्रतीक्षा में
अँधेरे में/भयमुक्त होने की/कांक्षा करता हुआ,
दिन को रौंद कर/पार करने के श्रम से थका हुआ,
संध्या-रूपी/आशा के पेड़ की डाल पर
वेताल को टाँग कर भी/भयमुक्त कहां?
यह वेताल/रात को भी
उसे, कहाँ सोने देता है?
अपने मायावी सम्वादों से
उसे घेरे रहता है।
प्रातः फिर/उसके कन्धे पर/सवार हो जाता है।
आदमी/उसके वोझ को
कन्धे पर डाले/खड़ा नहीं रह सकता
वह दिन भर उसे ढोता है
वस, इसी आशा में/कि संध्या आये
तो, साँस तो ले!
सदियों से
वेताल को/कन्धे पर ढोने वाला आदमी
वस, इसीलिए
रात की आकांक्षा/करता है।
आदमी के लिए, जीना/मात्र साँस लेना ही
रह गया है।
वेताल, उसकी-/नियति वन गया है,
संध्या एक आशा,/रात साँसों का सहारा
और दिन एक वोझा।



ईगो के कैक्टस

लोगों ने/अपने अंतःकरण के
बगीचे की बाउन्ड्री पर
ईगो के कैक्टस/उगा लिये हैं।
स्वेच्छाचारिता की खाद
और हठधर्मिता के पानी से
सींच-सींच कर/उन्हें पाल-पोष रहे हैं
और बतियाते हुए कहते हैं
देखिये/मेरे लॉन की बाउण्ड्री पर
मैंने,/कितने सुन्दर
कैक्टस लगाये हैं।
दोस्तो!
लॉन की बाउण्ड्री पर/कैक्टस नहीं
फूलों के पौधे लगाइये
कहीं ऐसा न हो
लोग कैक्टस के
काँटों के भय से
आप के घर/आना ही छोड़ दें।
और आप/अपने कैक्टस के घेरे में
आसमान ताकते रहें।



कोई है सचेत!

जीवन की कड़ुवाहट, झुँझलाहट,
असमंजस और विद्रूपता में,
कोई है,/जो सचेत है,
इन सबका साक्षी।
जो सोते हुए भी जागता है।
जो कोलाहल में भी/अर्थ ढूँढ़ता है।
जो अभिमन्यु और शुकदेव की तरह
गर्भ में भी सुनता, गुनता है।
सिन्धु की लहरों के साथ
थपेड़े खाकर भी/घायल नहीं होता,/डूबता नहीं।
सूरज की उष्णता से
हिमालय की हिम की तरह/पिघलता नहीं।
जो पृथ्वी-सा सहनशील,
वायु-सा कोमल/और जल-सा प्राणवन्त है।
यही तो है/मेरा रचनाकार, सर्जक,
जो युगों-युगों से/मेरे तन में मन बनकर
चैतन्य-स्वरूप हो गया है।
दृष्टा बन गया है।
सृष्टा बन गया है।
हिमालय-सा साधक/और गंगा-सा प्रवाहमान
समय को, सोपान-दर-सोपान जोड़ता
सृजन के गीत गुनगुनाता
जीवन की दिशा भटके/एंटीना को,
सही दिशा देने में/अनवरत प्रयत्नशील।
पीड़ाओं के पुंज से/अविचलित, निरपेक्ष।



विश्वकर्मा बनो

कमरे में बन्द/धुएँ की तरह
घुट रहे अंतस के
कदाचार के कुलिश कपाटों की/चिटखनियां खोलो
और अंतःकरण में/सदाचार की प्राणवायु
प्रवेश होने दो।
अंतस्तल में/मानवता के बीज बिखेरो
प्यार के पोषण की खेती/लहलहाने दो।
प्रयास की खुरपी से
प्यार के बीजों की दुश्मन
आस्तीन की साँप
खरपतवार को
खोदकर फेंक दो।
दीपक जलाओ/प्रकाश बिखरने दो।
उसे ढककर/काजल मत इकट्ठा करो।
नारद-मोह के कीच से/ऊपर उठकर
कमल की तरह
मानवता के उपवन को/सुवासित करो।
रावणीय ध्वंस
एवं स्वर्ण-मोह की चादर/उतार फेंको।
विध्वंस के एटमी विचार
रत्नाकर में विसर्जित कर
भविष्य के विश्वकर्मा बनो।



पड़ाव की तलाश

उम्र की ढलान/और यौवन में ओढ़ी गयी
जिम्मेदारियों की घटाओं की
मूसलाधार मार,/और उसकी फिसलन।
अपने ही कुछ कर्मों का
कीचड़ और दलदल।
उपायों के पाँयचे
कितने ही ऊंचे करने पर भी
बचाव कहाँ संभव?
दो पुत्रियों के विवाह/और छुटके की पढाई-
और आवारागर्दी की
चिन्ता के अजगर की
दिलो-दिमाग पर जकड़न की पीड़ा।
हम-सफर के आँखें मूँद लेने पर
गूँगे दिन-रात/लम्बी उम्र के लेखे में
बचे, पेन्शन के छाते की/छत के नीचे
शेष जीवन की यात्रा का/बीहड़ सफर।
मंजिल से बहुत दूर
मोतियाबिन्द के धुँधलके में
ढूँढती है आँखें
पड़ाव पाने के लिए/कोई क्षितिज।



वह तो कोई और ही है

उम्र-भर
मैं/अपनी देह की गर्मी से
तापता रहा।
देह की ऊष्मा बनी रहे,/इस हेतु,
भांति-भांति के आवरण
देह पर डालता रहा।
परन्तु, एक दिन,
समस्त आवरण,/होते हुए भी,
यह देह ठण्डी हो गयी/निश्चेत।
ऊष्मा जाती रही।
तब, मैंने जाना/यह ऊष्मा
मेरी देह से नहीं
मेरे आवरण से भी नहीं।
वह तो कोई और ही है।
जो यह देह नहीं/आवरण नहीं
इन सबसे परे है/परोक्ष।



नीड़

दरख्त की डालियों ने
सूखे पत्ते/ऐसे छिटकाए
कि, कहीं
धरती माँ के तन पर/आघात न लगे।
माँ तो माँ ही होती है।
आँधियाँ बहुत चली
पर, पेड़ की भुजाओं ने/पंछियों के घोंसले
अपनी छाती से/विलग नहीं होने दिये,
पंछी अपने अण्डे
पेड़ के भरोसे ही तो/छोड़कर
प्रातः गये हैं
चुग्गे के लिए।
अबोला पेड़/पंछियों का भरोसा है।
अनेक बार
ओलावृष्टि में/इसी पेड़ ने
पंछियों के पंखों पर
अपने पत्तों की/चादर तानकर
उन्हें भी तो/पिता का प्यार दिया है
और वह प्रलय
अपने सिर पर लिया है।
मैं,/ऐसा ही पुत्र
ऐसा ही पिता/ऐसा ही नीड़
आदमी के हृदय में
ढूँढ़ता फिर रहा हूँ
वर्षों से/आज तक।



उगते रहो - मेरी तरह

बीज/धरती में दबा
मिट्टी की तह में/साधना में लीन है।
वैसे ही,
जैसे मौन ऋषि/पर्वत-गुफा में
तप रहा हो,
सृजन के आयाम/नूतन गढ़ रहा हो,
हृद-गुहा में।
एक कोंपल/बन गया वह
और सूरज की तरह
ऐसे उगा/ऐसे उठा ऊपर
कि मानो
सूर्य से साक्षात ही
उसकी बनी जीवन-पिपासा।
सूर्य
अपनी रश्मियों के हाथ से/आशीषता है
और कहता है उसे
रहो तल्लीन सर्जन में।
बढ़ो, फूलो, फलो,/फिर बीज बनकर/बिखर जाओ।
फिर समाधि लो
तपो,/और कोंपल बन
सदा उगते रहो
मेरी तरह/अविराम।



त्रिभंगी

(एक)
चाय पीकर/रखे प्यालों की भांति
हम कितने/खाली व जूठे हो गये हैं।
अपेक्षा के घाव
फूटे वर्तनों की तरह/रिस रहे हैं।
रिश्तों के वन्धनों में/गांठें पड़ गयी हैं।
किस्मत,
राम के राजतिलक की/घोषणा होकर रह गयी है।
मुलाकातें,
पाँव के जूते की कील-सी/चुभने लगी है।
वायदे, ऐसे उड़ गये हैं
जैसे क्रिकेट के विकेट।
वस, इसी तरह
आदमी, अपने घर में ही/लुटा हुआ-सा,
अपेक्षा के घावों पर
असामर्थ्य का मरहम/लेपता हुआ-सा,
उड़े हुए विकेटों को
भौचक्का-सा देखता हुआ-सा
तुलसीदास के रामचरित की
चौपाई गुनगुनाता
"सुनहु भरत भावी प्रवल"
और विलखता हुआ-सा
हर गली, हर घर/हर जगह, फकीर की तरह
खाली झोली लिए
घूमता नजर आने लगा है।

(दो)
असल में/आदमी का जीवन
दिशा भटके एण्टीना वाली/टी.वी. की फड़फड़ाती
तस्वीर-सा हो गया है।
या, उस रेडियो की/न समझ आने वाली आवाज
जिसमें "नरो वा कुंजरो वा" का
धोखा ही धोखा है।
चारों ओर/असमंजस और झुंझलाहट का
धुआँ घेरे रहता है,/रात-दिन,
जिसमें/न चेहरे साफ हैं/न आवाज
अस्पष्ट आवाज/और अस्पष्ट पहचान की
पगडंडी पर,/चलता हुआ, आदमी
उम्र की ढलान पर/पहुँच कर, स्तब्ध हो,
सुस्ताने की इच्छा लिए/खड़ा है।

(तीन)
अस्ताचलगामी सूर्य की भांति
इस लुढ़कते जीवन की झुंझलाहट में
स्वयं के मूल्यांकन में
उसे सिर्फ एक असीम शून्य
कोहरे से आच्छादित-सा/दिख रहा है।
अतीत में/वह, स्वयं को
कहीं भी नहीं खोज पा रहा है
वर्तमान, उसे/चारों ओर/लीरालीर दिख रहा है।
प्यार की सूई का नाका/टूटा हुआ है
जोड़ने वाला धागा/किसमें पिरोये ?
कैसे वर्तमान को/सिलने का प्रयास करे ?
इस लीरालीर वर्तमान को
अपने चारों ओर लपेटे/कब तक घूमता रहे ?
यह रोशनी फैलाने वाला आदमी
अब अँधेरा ढूंढ़ रहा है/स्वयं को छुपाने के लिए।



दृष्टा

जीवन के आधारभूत मूल्य
पीसा की मीनार की भांति/झुकते जा रहे हैं।
कही जाने वाली/सभ्यता के रंग
कारखानों के धुएँ की तरह,
शुभ्र, बेदाग/इन्सानियत की,
ताजमहली खूबसूरती को/मटमैला करने में लगे हैं।
विदुर की मन्त्रणा/द्वापर से कलियुग तक/फाइलों में
मात्र अभिलेख की तरह
हमारी हठधर्मिता के/गोदाम में
अहंकार की गर्द तले/दबी पड़ी है।
गजलक्ष्मी के हाथियों ने
कमल की जगह/सूटकेस लटका लिए हैं,
अपनी सूंड में।
साधू-संत/गृहस्थ होकर/दलाली में व्यस्त हैं
पड़ौसी ने/जहरीले नाग
हमारे घर में/छोड़ दिये हैं।
गरीबी को भगाने के लिए/हमने
अनेक लक्ष्मण-रेखाएँ/खींच दी हैं।
भूमण्डलीकरण के बाज
हमारे नभांगन में/स्वच्छन्द मँडरा रहे हैं।
समुद्रपार से/लोग, हमें
"वसुधैव कुटुम्बकम्" का/अर्थ समझा रहे हैं।
करेले को नीम में
कुछ अधिक ही/रुचि होने लगी है।
समय की मार से संत्रस्त
मैं सम्पाती/सेटेलाइट की तरह
दृष्टा बना,/किसी जामवन्त. के दल की
प्रतीक्षा कर रहा हूँ/कालचक्र में।



चौखटों को चाटती दीमक

अब,/घर/सुरक्षित कहां है!
चौखटों को/दीमक चाट रही है
अन्दर ही अन्दर।
दरवाजों के पल्ले/कब तक टिके रहेंगे?
समय के काले साये
क्षितिज तक लम्बे हो गये हैं।
और घर
अँधेरे में/आँखें फाड़े
रोशनी की किरण के लिए/तरस रहा है।
घर की भीतरी दीवारें
अपने अतीत को/पोटली में समेटे
खूँटी पर टाँगे/मौन खड़ी हैं।
मौन/और घुप-अंधेरे में
डूबा घर,
चौखटों को/चाटती दीमक की
सरसराहट में
सिहर उठता है/बार-बार।



घर

घर, भट्टी हो गया लगता है
जब भी, बाहर से/भीतर प्रवेश करता हूँ
चौखट पर/गर्म हवाएँ
रौद्र रूप लिए/स्वागत-स्वरूप
फुफकारती खड़ी मिलती हैं।
आँगन की दीवारें/पहचानने से इंकार करती हैं।
बैठक, आजकल,/मेरे से बात नहीं करती
और न ही/बैठक का तख्त/कुछ बोलता है।
दीवार पर टँगे/कैलेन्डर ने भी
मुँह मोड़ लिया है।
गैरेज में खड़ी गाड़ी से/बात करने गया
तो उसने दरवाजा ही/नहीं खोला।
भोजन की थाली/हमेशा ही
हँसकर बुलाती थी
आजकल वह भी/रूठी-सी लगती है।
आप यह सब नहीं जानते/जानेंगे कैसे?
मैंने कभी बताया ही नहीं।
आप तो, यही जानते हैं/यह घर मेरा है
और यह ठीक भी है
फर्क इतना हुआ है/कि अब,
मैं इस घर का नहीं रहा
घर अब भी मेरा ही है।



एक गीत होना

बरसते बादलों से
बूँद-बूँद, चुने हैं गीत, मैंने।
मेरे साये के कागज पर
बिजलियों की कलम से
कुछ वाक्य उकेरे हैं, मैंने।
ठण्डी हवा,/जब मेरे साये पर से गुजरती है
तो वह,/इससे गीत गूंथ लेती है।
और दिग्दिगन्तों तक/गाती जाती है,
निश्छलता का गीत।
जब वह पवन
पेड़ों, पहाड़ों से टकरा कर बहती है
तो मेरे गीतों से/संगीत फूट पड़ता है,
श्रम का संगीत,/मिलन का संगीत।
और वह संगीतमय गीत
समुद्र से मिलकर/लहर बन जाता है।
लहराने लगता है मस्ती में
माँझी की नैया नचाता है
दोस्ती से थपथपाता है
कहता है माँझी से/तुम भी गाओ
मेरे साथ गुनगुनाओ।

और किनारों से दूर
मुझे क्षितिज तक लेते जाओ
मुझे उगते सूरज को/गीत सुनाना है।
उसका दिन/गीत से भरा हो
इसलिए मुझे वहाँ जाना है
मैं उसके साथ ही तो/रहना चाहता हूँ,
उसका श्रम हरने को,
उसे मुस्कान देने को।
प्रकाश की मुस्कान।
वह, मुझे/अपनी प्रकाश की मुस्कान के साथ
सर्वत्र पहुँचा देगा।
तभी तो चिड़ियाँ चहक पायेंगी,
आदमी जाग पायेंगे,/सृष्टि जीवन्त होगी।
मैं, जीवन्त चैतन्य गीत
जब-जब भूमि पर बरसता हूँ,
नदियाँ, झरने/सभी तो गाने लगते हैं।
उनकी समुद्र तक की यात्रा
मैं, गीत-संगीतमय किये रहता हूँ।
मैंने,/तपती लूओं के बदन पर भी,
आँधियों से गीत लिखे हैं।
बर्फ पर भी,/चाँदनी से गीत लिखे हैं।
आदमी को मेरे गीत अच्छे लगते हैं
वह मेरे हर गीत को गाता है
यही तो मेरे होने का अहसास है।
आप बताएँ,
मैं, गीत के अतिरिक्त क्या हूँ?
इतना-सा होना,
बस! एक गीत होना,/क्या पर्याप्त नहीं है?



पगलाया वर्तमान

स्मृति/इतना धुँधला गयी है
कि अस्तित्वबोध ही
नकार बैठी है।
अस्मिता की पहचान
शुरू करें तो कहाँ से
व्यक्तित्व के/परत दर परत
भिन्न-भिन्न रूप/एक स्वरूप में
अनेकों विरोधाभास
बौद्धिक, भ्रमिल, कुहासे-जन्य।
चेतना के व्योम में
अनुभूति की घुटती घटाएँ,
एक-दूसरे को/आच्छादित करते
विभिन्न भाव-बिम्ब
धुँधलाते चित्र/मानसिक द्वन्द्व
कितना विचित्र/एक पगलाया पुरुष
वर्तमान।



काल-खण्डों की परतों में

पारदर्शी स्मृति के
काल-खण्डों की परतों में/धीरे-धीरे
मोतियाबिन्द/न जाने/कब उतर आया।
जीवन के पठार के/किनारे पर
ढलान का अहसास!

विस्फारित आँखों में
बर्फ-सा कुछ जमा हुआ
विगत-आगत/धुँधले-धुँधले।
ठण्डी साँसों में/ऊष्मा की चाह।
वह कुछ खोजता है/असल में टटोलता है
मन के किसी हाथ की
अँगुलियों की पोरों से,
और पाता है/एक खुरदरी छुवन।
पहचान दूर-दूर होती-सी।
मस्तिष्क को झटकने के बाद भी
धुँधलाहट छँटती नहीं।
हवा में कुछ घुल-सा गया है
घुटन अथवा मटमैला रंग
आसमान के तारे/अब, नहीं टिमटिमाते
चाँद फैल-सा गया है
शायद बिखरने जा रहा है।
उसे, आजकल
भय-सा लगने लगा है,
वह भीतर ही भीतर
भुरभुराने लगा है।
इसे रोकने की
विधि तलाशता हुआ/उसका मन
अंतरिक्ष में/क्षण-भर विचर कर
पुनः पृथ्वी पर गिरकर
सुबक उठता है
निरुपाय, थका-थका
विदेह होने को/जी चाहता है।
विदेह होने पर
शायद, सबकुछ/साफ-साफ हो जाय।



अभिव्यक्ति के बीच का मौन

मित्रो
मैं, बहुधा/जो कहना चाहता हूँ
कह नहीं पाता।
लिख पाना/इससे भी दुरूह।
मैं चिड़िया की चहचहाहट
और गाय के रँभाने को/लिख नहीं पाता।
शायद कोई भी नहीं लिख पाता
अथवा कह पाता/या समझ पाता/या समझा पाता।
मेरे पास/बहुत शब्द हैं
वाणी भी/फिर भी/मैं अनेक बार
कहते-कहते/लिखते-लिखते
रुक जाता हूँ
ऐसा लगता है
बहुत कुछ/शब्द से इतर है।

इसीलिए
"हम बहुधा
सहसा कह देते हैं
भाषा की अपनी सीमा है"।
अभिव्यक्ति के बीच में
शायद कोई खाई है
वरना, कही गयी बात के
अनेक अर्थ क्यों हो जाते हैं?
आप, इसे बुद्धिकौशल का
नाम दे सकते हैं
अभिव्यक्ति के मध्य की/खाई को
शायद ही कोई नकारे।
रिक्त स्थान भरने जैसी
पहेली बन गयी है–
अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण।
अलग-अलग संप्रेषण
भिन्न-भिन्न अभिव्यक्ति
विलग-विलग अर्थ।
मेरे साथ ऐसा क्यों होता है?
आप कहेंगे/मैं, निरा अल्पज्ञ हूँ
हो सकता हूँ!
पर, आपके साथ/ऐसा क्यों होता है?
आप भी तो/मुझे, उस दिन
नहीं समझा पाये
मुर्गी और अण्डे में/पहले कौन?
अभिव्यक्ति के बीच का मौन
सदा अनिर्वचनीय रहा है
इसीलिए शायद
नेति-नेति ही, युग-द्वय की
अंतिम अभिव्यक्ति है।



फ्रेम में जड़ा आदमी

फ्रेम में जड़ा आदमी
शीशे के आरपार/उदास-उदास
पता नहीं/कब से/क्या देख रहा है?
पीठ पीछे/हार्डबोर्ड का अँधेरा।
आगे का शीशा भी
सख्त और सपाट,/हार्डबोर्ड का बिरादर।
इन दो सख्त पाटों के बीच में/पिचक कर
वह एक तस्वीर-सा/चिपक गया है;
या स्वयं जा बैठा है/समाधि में लीन
या........।
शीशे की बाहरी परत पर
जमी गर्द से/उसे सरोकार कहां है।
गर्द-जमे शीशे के उस पार
अन्दर सब ठीक-ठाक है
दशों दिशाओं से सुरक्षित
फ्रेम में जड़ा आदमी/जड़ता का मूर्त रूप।



धो सकूं तो

वहुत धोया
मलिन मन को
पर, तमस
धुलता कहां है।
लग रहा है
कोयला ही हो गया है
अव अगन से
धो सकूं तो
कनक-सा
कुछ निखर आये।
और धोलूं
भस्म वनकर
शिव शरीरे
लिपट जाए।
स्नान कर
भागीरथी में
साथ उसके
निकल जाये
भूमि पर
कण-कण विखर कर
भूमि के तन में समाए
तो कहीं शिव-रूप पाए
शिव कहाये।



फिर द्वैत कहाँ?

पृथ्वी से आकाश-पर्यन्त
समस्त चर-अचर में
बाहर-भीतर
मैं ही मैं व्याप्त हूँ
चैतन्य-स्वरूप
आपके भीतर
मैं, समस्त संकल्प
एवं क्रियाओं में
अभिव्यक्त हूँ
तभी तो मैं व्यापक हूँ
आपका होना, न होना
सोचना, करना
समस्त, मेरे संकल्प के
स्फुरण का परिणाम है/आपके भीतर के चैतन्य से-
आकाश से परे तथा
अनन्त ब्रह्माण्ड तक
या उससे परे/अगर कोई है तो
वह मैं ही मैं हूँ
मेरे सिवाय/और कुछ है ही नहीं
इसीलिए अहं ब्रह्मास्मि।
सब कुछ मैं/मेरे सिवाय ज्ञात-अज्ञात
कुछ भी नहीं/मेरे भीतर समस्त ब्रह्माण्ड
समस्त ब्रह्माण्ड में मैं ही मैं
मैं और ब्रह्माण्ड/दोनों एक ही हैं,
फिर द्वैत कहाँ?
एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।



यह हुई रचना

कलम सूचि
है रोशनाई सबल धागे
शब्द की पोशाक सिलकर
छन्द पहने।
शब्द के हृद का स्पन्दन
है मेरी कविता।
श्रवण हो तो
सुने कोई।
भरूँ लय का कसीदा
गीत बन
हो जाय मुखरित
गुनगुनाए कण्ठ जन-जन
पवन पंखों से उड़ाये।
आदमी के मृण्मयी तन में
करे संचार प्राणों का
तभी तो,
यह हुई रचना
मुझे ब्रह्मा बनाया है
इन्हीं जीवन्त लोगों ने।



कब तक सोते रहोगे भारत!

हिरण्यगर्भ में
पुराण पुरुष की तरह
कब तक सोते रहोगे भारत!
लोग तुम्हें
अचेत समझ बैठे हैं।
थोड़ी-सी करवट तो लो
मेरे भारत!

अपनी पलकें खोलो तो सही
तुम देखो तो सही
पूर्व में, तुम्हारे पुरखे
अष्टावक्र, शुकदेव और अभिमन्यु
गर्भ में भी चैतन्य रहे हैं
तुम युवा होकर भी
अचेत पड़े हो!
क्या तुम्हारी जंघाएँ
उठने को नहीं अकुलाती?
तुम उठो
और अपने हाथों को
ब्रह्मास्त्र बनाओ।
विनाश के वज्र को
अपने ब्रह्मास्त्री हाथों से
रोकना होगा तुम्हें।
तुम इस तामसी हिरण्यगर्भ से
चैतन्य होकर बाहर आओ
अपनी देह पर
रजोगुण की रज से
लेप करने में ही
तुम्हारी देह की कान्ति है
देखो, चारों ओर
अशान्ति ही अशान्ति है
तुम जागो
तुम्हारे जागने में ही
शान्ति की क्रान्ति है।
तुम्हारे जागने में ही
विश्व में शान्ति है।



जिन्दगी का गीत गुनगुनाएँ

आओ, पाँवों से चलकर
पहाड़ पर चढ़ें,
और देखें, उस पार क्या हो रहा है!
आओ, नदियों को वो रास्ते दिखाएँ,
जिधर से वे कभी नहीं गयी।
सूखी और बंजर भूमि पर
बहना सिखाएँ, इन्हें।
आओ, बादलों से मिलें,
उन्हें अकालग्रस्त भूमि पर उतारें।
आओ, बिजली से दोस्ती करें,
उसे कारखानों तक पहुंचाएँ।
आओ, अंधेरे का कम्बल फेंकें,
और सूरज की रोशनी में नहाएँ।
आओ, होंठों को खोलें,
और जिह्वा से शब्दों को चखें।
आओ, हाथों से समय का शृंगार करें।
आओ, आँखें खोलें,
और आँखों से देखें।
आओ, इस सम्पूर्ण संसार को,
आँखों पर बिठाएँ,
छाती से लगाएँ,
और जीवन-भर साथ निभाएँ।
आओ, चाँदनी में,
जिंदगी का गीत गुनगुनाएँ।



ग्रीष्म-बिम्ब

(एक)
बहुत छोटा
हो गया- प्रातः।
छिना बचपन
दिवस का।
और यौवन-मद
बरसता भूमि पर
आतप लिए।

(दो)
क्षितिज के उस पार
कोई फट पड़ा
ज्वालामुखी।
उठी लपटें।
उसी के शिखर
ऊपर उठ रहे
नभ में।
है ग्रीष्म की यह भोर
उदयाचल हुआ रक्ताभ
बरसाने लगा शोले।
दिवस का प्रथम ही सोपान-
प्रातः
आज कितना उष्ण है।

(तीन)
उठते-उठते
आ गया है
एक अग्निकुण्ड
सम्मुख
भूमि के।
जब जानकी
उतरी खरी
अग्नि-परीक्षा में।
मैं, जानकी की माँ, धरा हूँ,
आ करूं
तेरा यजन - दिन-भर।
और अस्ताचल
तुम्हें पहुँचा
करूंगी रात में विश्राम
शीतल चांदनी में।

(चार)
शब्द
चुभने लग गये
अंतःकरण में।
जिस तरह से
ग्रीष्म चुभती देह में।
दाँत देने लग गये हैं
जख्म, मीठे आम को।
क्यों मुझे है मोह
मेरी लेखनी से।
क्यों उसे पैनी
किये जाता हूँ मैं?
कलम की
यह उष्णता
मेरी विवशता है।
ग्रीष्म के ये दिन
कभी
छोटे नहीं कर पायेगा
मेरा कवि
ये दिन सभी को भोगने हैं।
आपको
मुझको।
धरा की कोख में
निर्माण के साधन
क्रियाएँ ऊष्मा की भी।
मुझे, जो दिख रहा आगे,
कलम की विवशता है-मांडना।
मैं क्या करूं?
चुभेंगे शब्द
पैनी कलम की तो
यही फित्तरत है।



पावस-बिम्ब

(एक)
चाँद-खटोले
बैठी दादी
दही बिलोवे
नभ-कटोरे में रखे
नवनीत के लौंदे
बन गये
फिसलते बादल।

(दो)
मिलकर जलचर
मथे सागर
और लहरें
सिन्धुरस ऊपर उछाले
यही हैं वो
गगन में लेते हिलोरे
मचलते बादल।

(तीन)
ले उड़ा
हवाई यक्ष
हिमगिरि के अनेकों शिखर
चलते, रख गया है
नभाँगन में
रुपहले वादल।

(चार)
बहती हवाओं के
बलिष्ठ कन्धों पर,
लदे हैं जल के भारे।
भूरे, श्याम
और रंग-विरंगे
पटों में बंधे
मेघ।
पर्वतों के शिखरों
एवं पेड़ों की फुनगियों में
अड़ते, उलझते,
फट गये हैं
गर्जना करते
समस्त पट।
और झरने लगे हैं
पावसी गाय की तरह
भू पर
ऋतु पावस मनोहर
भर गये प्यारे सरोवर
तृप्तिकर।



शरद-बिम्ब

(एक)
दूर-दूर
हिमालय ने
करवट ली
और चल पड़ी
ठण्डी हवा
कश्मीर से
राजस्थान तक।

(दो)
कैलाश से
शिव का नन्दी
दौड़ पड़ा
दक्षिण की ओर।
उसी का वेग
बह चला है
बर्फीली हवाएं
बनकर।

(तीन)
अलकापुरी से
यक्ष
बर्फ के पंख
लगाकर
उड़ चला है
मैदानों की ओर
बनकर
शीत-लहर।

(चार)
मानसरोवर में
क्रीड़ारत
हंसों ने
उतार फेंकी है
कोहरे की चादर
मैदानों की ओर
शीत से सराबोर।



जिन खोजा तिन पाइया

विवेकानन्द
आप विवेक हो
आप आनन्द हो
संसार में, मनुष्य के लिए
अगर कुछ प्राप्त करने योग्य है
तो वह है विवेक,
अगर कुछ भोगने के लिए है
तो वह है आनन्द।
जिन खोजा तिन पाइया
आपने विवेक खोजा
और आनन्द प्राप्त किया।

संसार के श्रेष्ठ लोगों की भांति
आपने भी, जो उत्तम धन पाया
वह दूसरों में बाँट दिया।
संसार में, किसी भी काल में
व्यक्ति सदा, आनन्द को खोजता रहा है।
प्रकृति का यह स्वभाव है
आनन्दित होना,
औरों को आनन्द देना।
विवेकानन्द
आपने सूर्य की भांति
विश्व को प्रकाश एवं ऊर्जा दी
उसका पथ प्रशस्त किया।
अज्ञान-निशा में
आप, मयंक बन कर आये
और भूमण्डल पर त्रस्त मानवता को
अपनी अमृत-रश्मियों से
सुख और शीतलता प्रदान की।
आप विवेक-रूपी
शीतल, मन्द, सुगन्ध
बयार बन कर आये
और मानवता की
उखड़ती साँसों में
प्राणों का संचार किया।
ब्रह्मा जैसे तपस्वी
शिव जैसे साधक और योगी
नदियों की कलकल जैसी
मधुर वाणी के धनी,
ज्ञान-पथ के पथिक
विवेक-रूपी मन्दराचल से
संसार-सागर को मथकर

आनन्द-रूपी अमृत-घट से
जन-जन को
अमृत पिलाने वाले विष्णु
आपको नमन है।
आप, अन्धे की लाठी
लंगड़े की बैसाखी
गूँगे की भाषा, बनकर आये।
आप अज्ञान-तिमिर से
आच्छादित पथ को प्रशस्त करने
विवेक की लौ बनकर आये।
आपने, मनुष्यों को
भेड़-बकरियों से
पुरुष-सिंह बनाया।
आपने, पापी समझे जाने वालों को
अमृत पिलाया
अमृत-पुत्र बनाया।
आपने, लोगों को शून्य से उबार कर
ब्रह्म से ठसाठस-भरे जगत में
मनुष्य को, अपने स्वरूप का ज्ञान कराया
वैसे ही, जैसे कृष्ण ने
अर्जुन को गीतामृत पिलाया।
मैं, मेरे सर्जक
और मेरे सृजन में
कोई भेद नहीं,
इस विवेक के बाद
जो शेष बचता है
वह है- आनन्द
बस, यही है विवेकानन्द
यही है विवेकानन्द।

  